SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

आलोचना की आत्मकथा

मनोज कुमार सिंह, (Ph.D.) हिंदी विभाग
पूर्णियॉं विश्वविद्यालय, पूर्णियॉं, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
मनोज कुमार सिंह, (Ph.D.) हिंदी विभाग
पूर्णियॉं विश्वविद्यालय, पूर्णियॉं, बिहार, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

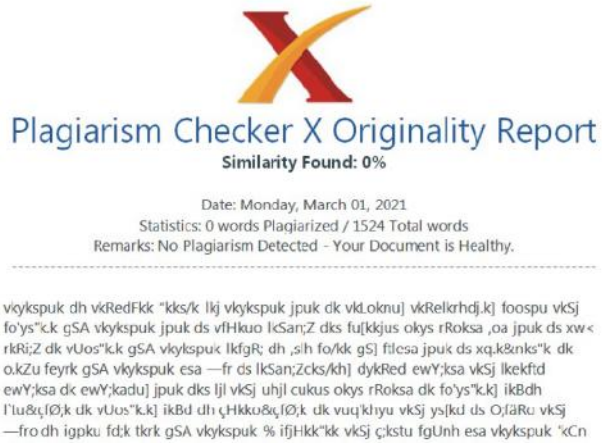

Received on : 01/03/2021
Revised on : -----
Accepted on : 08/03/2021
Plagiarism : 00% on 01/03/2021

शोध सार

आलोचना रचना का आस्वादन, आत्मसतीकरण, विवेचन और विश्लेषण है। आलोचना रचना के अभिनव सौंदर्य को निखारने वाले तत्वों एवं रचना के गूढ तात्पर्य का अन्वेषण है। आलोचना साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसमें रचना के गुण–दोष का वर्णन मिलता है। आलोचना में कृति के सौंदर्यबोधी, कलात्मक मूल्यों और सामाजिक मूल्यों का मूल्यांकन, रचना को सरस और नीरस बनाने वाले तत्वों का विश्लेषण, पाठकी सृजन–प्रक्रिया का अन्वेषण, पाठक की प्रभाव–प्रक्रिया का अनुशीलन और लेखक के व्यक्तित्व और कृतिव की पहचान किया जाता है।

मुख्य शब्द

आलोचना, साहित्य, आलोचना विश्लेषण.

आलोचना : परिभाषा और प्रयोजन

हिन्दी में आलोचना शब्द का जो अभिप्राय है, वही अंग्रेजी में Criticism शब्द का अर्थ है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी के शब्द 'आलोचना' के लिए बंगला में समानार्थी शब्द है 'समालोचना, तो मराठी में उसे 'टीका', कन्नड़ में 'टीके' और तमिल में 'विमर्शनम्' कहते हैं। अन्य ऐशियाई भाषा चीनी में आलोचना के लिये शब्द है 'पीपींग' और जापानी में 'हिहान' शब्द है। हिन्दी का शब्द 'आलोचना' के लिये रुसी में 'कृस्तिका', अंग्रेजी में 'क्रीटिसिज्म' और फ्रेंच में 'क्रीटिक' है। 'आलोचना' साहित्य की एक पारिभाषिक शब्दावली है। विकिपीडिया में आलोचना को परिभाषित करते हुए लिखा गया है –''किसी वस्तु या विषय की, उसके लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, उसके गुण–दोषों एवं उपयुक्तता का विवेचन करने वाली साहित्यिक विधा है।''[1]

आलोचना कृति की सर्जनगत मौलिकताओं की व्याख्या करती है। आलोचना कृति के आस्वादन में सहायता

करती है और कृति के कौशल की पहचान कराती है। आलोचक रचना के शब्दों की रचना–विधि की बारीकियों का भलीभॉति विवेचन करती है। रचनाकार के शब्दार्थ उपयोग की बारीकियों, विशिष्टताओं और विशेषताओं की पहचान कराना आलोचना है। सर्जक के मन्तव्य, उद्देश्य और संदेश के संग प्रयुक्त माध्यमों भाषा, बिम्ब, प्रतीक, छन्द, अलंकारादि की उपयुक्तता, औचित्य का निर्धारण आलोचना है।

आलोचना रचनागत विषय वस्तु का तदवत्दर्शन करती है। रचनाकार की कल्पना पर रीझती है और उसकी सुक्ति की अनोखी सूझ पर मोहित होती है। रचना के सौंदर्य परक तत्वों का आत्मसातीकरण करते हुए, कृति के कौशल की पहचान करते हुए काव्य संवेदना का आस्वादन करती है। रचना का सहृदयता पूर्वक भावन ही रसास्वादन है। तत्पश्चत् परीक्षण और विश्लेषण का कार्य होता है। रचना के सामाजिक–सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों एवं मानों की तलाश करना आलोचना है। फिर कृति में निहित मूल्यों और मानों का मूल्यांकन करते हुए साहित्य परंपरा में कृति का स्थान निरुपण करती है। इस तरह आलोचना के बहाने सभ्यता–समीक्षा होती है।

भारतीय मनीषियों ने रचना को कारयित्री प्रतिभा और आलोचना को भावयित्री प्रतिभा के रुप में पहचाना है। रचनाभावों, विचारों और इन्द्रियबोधों का संश्लेषण है तो आलोचना उसका विश्लेषण। श्यामसुंदर दास का कहना है– ''यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या माने तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पडेगा।''[2]

आलोचना चिंतन परक साहित्यिक विधा है, क्योंकि यह एक बौद्धिक क्रिया–व्यापार है। नामवर सिंह कहते हैं– ''आलोचना अपने समय की बौद्धिकता की उपस्थिति है।'[3] अध्ययन, चिंतन–मनन और विश्लेषण हेतु तार्किकता जरुरी है। रमेश कुन्तल मेघ आलोचना को 'कलात्मक विचार' मानते हैं। राममूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं. 'बौद्धिक वैभव के प्रदर्शन का मानवीय स्वभाव शास्त्र निर्माण की प्रेरणा देता है।'[4] त्रिपाठीजी शास्त्र को बौद्धिक वैभव का प्रदर्शन मानते हैं। इतना तो तय है कि आलोचना के लिए बौद्धिक कौशल होना चाहिए साथ ही आलोचक में रसानुभूति की क्षमता भी होनी चाहिए। देवराज 'आलोचना को रसानुभूति की बौद्धिक व्याख्या' मानते हैं। रमेश कुंतल मेघ आलोचना के कार्यों में किसी युग के सौंदर्यबोध की, प्रकृति वर्णन की, पात्रों की, सृष्टि की, मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों की, वर्णन की शैली और अभिव्यंजना प्रकारों की, सामाजिक समस्याओं तथा सहृदयों के रूचियों की विवेचना करना मानते हैं।''[5]

मैनेजर पाण्डेय अपने आलेख 'अडोर्नो और आलोचना की संस्कृति' में लिखते हैं– ''आलोचना मानव–चेतना की स्वतंत्रता का लक्षण है और प्रमाण भी, और उसकी रक्षा मनुष्य की स्वतंत्रता का अनिवार्य शर्त है।''[6]

आलोचना के विषय में माला रविन्दम चतुर्वेदी अपने आलेख कवि और सामाजिक दायित्व में कहते है., 'आधुनिक आलोचना अर्थ और अनुभव की सूक्ष्म अद्वैत प्रकिया को समझने का उपक्रम है।' उनका कहना है कि 'आधुनिक साहित्य चिंतन अर्थ को एक और स्थिर रुप में न मानकर बहुस्तरीय और विकासशील मानता है।'[7]

प्रायोजन

1 आलोच्य कृति का विश्लेषण

आलोचना कृति विशेष को रसमय अथवा नीरस बनाने वाले उपादानों की ओर संकेत करती है और समुचित दृष्टिकोण से उस कृति का मूल्यांकन करती है। वह कृति के सौंदर्य को बढ़ाने वाले और घटाने वाले कारकों का विश्लेषण और मूल्यांकन करता है। समीक्षक का कार्य रचना के मूल संदेश और उसकी रचना.–प्रक्रिया को उद्घाटित करना है। 'रचना के स्रोत और समीक्षा के मानदंड' में डॉ. रामरतन भटनागर आलोचक के कार्य को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं– ''कलाकृति के पीछे जो जीवन संदेश या तथ्य स्थापना है, उसमें कलाकार का जो स्वप्न मूर्तिमान हुआ है, उसमें अभिव्यंजना के जिन नये साधनों का उसने प्रयोग किया है और इन विभिन्न उपकरणों में वह जिस प्रकार संतुलन स्थापित करने में समर्थ हुआ है.ये समीक्षक के महत्वपूर्ण विषय हैं। समीक्षाक्रम में समीक्षक उस कृति की तुलना अन्य कृतियों से करता है तथा परंपरा और युग संदर्भ को रेखांकित करते हुए उसका मूल्य–निर्धारण करता है।''[8]

2 कृति का मूल्यांकन करना

रचना की सामाजिक अस्मिता और सार्थकता तथा उसके रचनात्मक प्रभाव एवं अभिप्राय की पडताल करते हुए उसके सौंदर्य एवं मर्म को पहचानने का प्रयास ही आलोचनाकर्म है। कृतियों के निर्माण में प्रवृतियों और कौशलों की पहचान करना और साहित्य के प्रतिसंवेदनशील सजगता एवं साहित्यिक विवेक पैदा करना आलोचना का काम है।

'भारतेन्दु युगीन आलोचना की शब्दावली और उसका रचना संदर्भ' में रामचंद्र तिवारी लिखते हैं : ''आलोचक रचनाकार की अंर्तयात्रा का साक्षी होता है। वह रचना में अपनी संपूर्ण संवेदनशीलता एवं बौद्धिक क्षमता के साथ प्रवेश करता है। उसके रचनात्मक उपादानों के संश्लिष्ट संघटनात्मक वैशिष्ट्य को पहचानता और उसका रागात्मक साक्षात्कार करता है, इसके बाद जब वह उसके मर्म का उद्‌घाटन, सौंदर्य का विवेचन और मूल्य का आंकलन करता है तो स्वयं एक नई रचना कर देता है।''[9] रामचंद्र तिवारी आलोचना को रचना के समतुल्य रखते हैं। उनके अनुसार आलोचना का काम है रचना के मर्म का उदघाटन, उसके सौंदर्य का विवेचन और उसके मूल्य का आकलन करना। इस क्रम में वे आलोचना के पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करता है। उनके अनुसार 'किसी भी युग में प्रयुक्त आलोचना के पारिभाषिक शब्द उस युग की वैचारिक मनोभूमि के निदर्शक होते हैं।'[10]

आलोचना रचना की अनुकृति मात्र नहीं है, बल्कि रचना के सर्वागीण सौंदर्य के रेशे–रेशे को व्याख्यायित करने वाली आलोचना में रचना की भविष्य दृष्टि भी झलकती है। आलोचना को रचना से भी आगे जाना चाहिए। आलोचना को इतिहासबोध, विश्वबोध सम्पन्न दृष्टि वाला होना चाहिए।

3 पाठकों की रूचि का परिष्कार

डॉ. देवराज आलोचना के कार्यों का उल्लेख करते लिखते हैं. 'आलोचना का मुख्य काम आलोच्य–कृति की चेतना. विकासी व्याख्या प्रस्तुत करना है। चेतना विकास का अर्थ है। मनुष्य की संवेदनशीलता, वैचारिक उर्जा और आत्मिक उन्नति। मानवीय संवेदना को जीवंत रखना, उसमें प्रेम, दया, ममता, करूणा, वीरता आदि भावों को उत्प्रेरित करना रचना और आलोचना का प्राथमिक दायित्व है। भारतीय साहित्य दर्शन और काव्यशास्त्रीय मीमांसा में 'रसवाद' और 'आनन्दवाद' की महत्ता इसलिए है कि वह मानवीय संवेदना को जीवंत रखता है। रस और उसके स्थायी भावों की व्याख्या मूलतः हृदयगत है। श्रृंगार, वीर, वीभत्स, रौद्र, करूण सहित सभी नवरस मानव हृदय में स्थायीभाव से मौजूद है, जिसे साहित्य–रचना और आलोचना उत्प्रेरित कर सजग बनाये रखता है। यही संवेदनात्मक सजगता उसकी चेतना के विकास का कारण बनता है। मानव चेतना के विकास में रचना और आलोचना की प्रभावकारी भूमिका होगी तो ही वह श्रेष्ठ कहलाएगी।

आलोचक की पहचान बताते हुए नामवरसिंह का कहना है कि 'आलोचक वह है जो कविता की भावधारा तक आपको पहुँचा दे। पाठक इसके बाद अर्थ स्वंय ग्रहण करेगा।'[11] उन्होंने संस्कार, विचारधारा और पूर्वग्रह को कविता की भावधारा तक पहुँचने में बाधक माना है और आलोचना का यह दायित्व बनता है कि पाठक को कविता की भाव धारा तक पहुँचने में सहायता करे।

नामवरसिंह आलोचना के दायित्व का दर्शन कराते लिखते हैं – ''आलोचना का एक काम है, इतिहास का, परंपरा का मर्म समझना–समझाना और उसे आगे की पीढ़ियों के बीच जीवित रखना।''[12] आलोचना का काम युग के प्रमुख अन्तर्विरोधों को रेखांकित करना है। समाज के विकासमान शक्तियों की पहचान कराना भी आलोचना का काम है। साहित्य सामाजिक–वैचारिक परिवर्तन के लिए जरुरी है।

निष्कर्ष

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। नामवरसिंह आलोचना को लोकतांत्रिक प्रक्रिया को तेज करने के दायित्व से जोड़ते हैं। उनका कहना है कि 'समाज को लोकतांत्रिक बनाने की दिशा में प्रेरित करें, यह आलोचना का बहुत बड़ा दायित्व है।'[13] परंपरा की रक्षा का दायित्व आलोचना का है। लोकतांत्रिक समाज और राष्ट्र में आलोचना का दायित्व और जबाबदेही बढ़ जाती है। हृदयनारायण दीक्षित अपने आलेख में लिखते हैं: ''रचनात्मक आलोचना ही राष्ट्र की

सिद्धि और समृद्धि में सहायक होती है। रचनात्मक आलोचना राष्ट्र और समाज का ही आत्मोद्घाटन होती है। वह सुस्थापित तथ्यों को और मजबूत करने के नये तथ्य देती है। संदेहों का निवारण करती है और गलती सुधारने का अवसर भी देती है। ऐसी आलोचना वाली असहमति भी सौंदर्यपूर्ण होती है। लोकतंत्र में ऐसी असहमति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।''[14] किसी भी समाज और राष्ट्र की समृद्धि में आलोचना की भूमिका होती है। यह आलोचना स्थापित विचार के समक्ष विकल्प और पूरक विचार को प्रस्तुत करती है। विचार का वैकल्पिक पक्ष प्रस्तुत करने वाली आलोचना लोकतंत्र को मजबूत करती है। सुस्थापित सत्यों और तथ्यों के सही विकल्प प्रस्तुत कर आलोचना अपना नैतिक कर्तव्य निभाती है और ऐसी ही आलोचना को हम रचनात्मक आलोचना कह सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. वीकिपीडिया
2. दास, श्यामसुंदर, *साहित्यालोचन,* पृ0 18।
3. सिंह, नामवर, *हिन्दी आलोचना की परंपरा* ।
4. त्रिपाठी, राममूर्ति, *आलोचना सिद्धांत,* पृ0 18।
5. कुंतलमेघ, रमेश, *साहित्य सृजन और आलोचना सिद्धांत,* पृ0 28।
6. मैनेजर पाण्डेय, *अडोर्नो और आलोचना की संस्कृति,* पृ0206।
7. चतुर्वेदी, माला रविन्दम्, *कवि और सामाजिक दायित्व,* पृ0 126।
8. भटनागर, रामरतन, *'रचना के स्रोत और समीक्षा के मानदंड',* पृ0 38।
9. तिवारी, रामचंद्र, *भारतेन्दु युगीन आलोचना की शब्दावली और उसका रचना संदर्भ'।*
10. उपरोक्त
11. नामवर सिंह, *हिन्दी आलोचना की परंपरा* ।
12. उपरोक्त पृ0 143।
13. उपरोक्त।
14. हृदयनारायण दीक्षित।

****